साहित्य के रूप

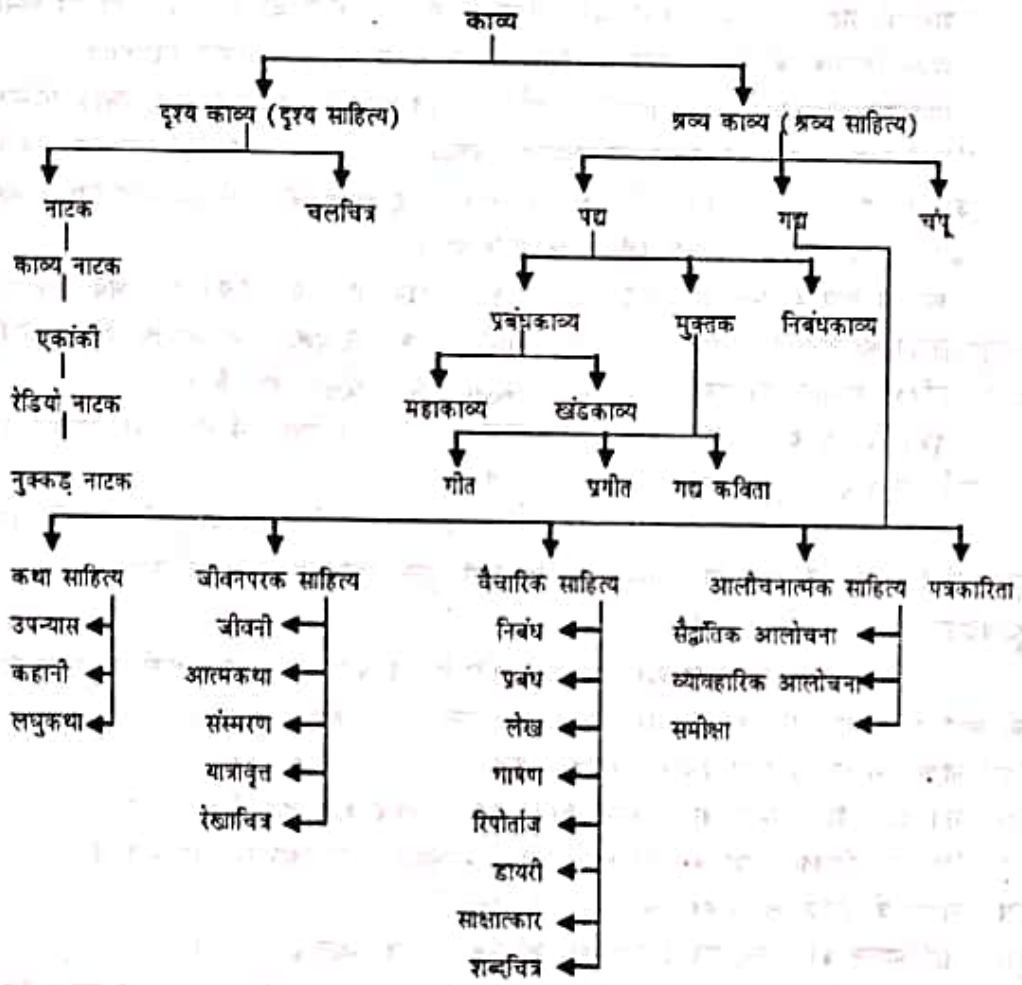

काव्य

संस्कृत साहित्यशास्त्र में **'काव्य'** शब्द संपूर्ण साहित्य का बोध कराता था । वर्तमान में 'काव्य' का अर्थ मात्र कविता तक सीमित हो गया है । केदारनाथ सिंह का काव्य संग्रह कहने का तात्पर्य उनकी कविताओं का संग्रह है । उसमें उनकी गद्य रचनाएँ नहीं आ सकतीं । यदि हम कहते हैं कि मुक्तिबोध का समग्र साहित्य वहाँ सुलभ है तो इसमें मुक्तिबोध की कविताओं के अलावा कहानी, आलोचना, डायरी आदि सभी विधाओं की रचनाएँ आ जाएँगी । यदि हम मैथिलीशरण गुप्त का साहित्य कहते हैं तो उसमें उनकी कविताओं के साथ ही पत्र आदि गद्य रचनाएँ, नाटक तथा चंपूकाव्य 'यशोधरा' भी आ जाता है ।

प्राचीन काल में गद्य लिखनेवाले को भी कवि ही कहा जाता था । आधुनिक समय में कवि मात्र कविता लिखने वाले को कहा जाता है । कविता तथा गद्य दोनों लिखने वाले साहित्यकार या लेखक कहलाते हैं। हिंदी में अलग-अलग विधाओं के रचनाकारों के अलग-अलग नाम हैं । जैसे - कवि, कवयित्री, गीतकार, नाटककार, एकांकीकार, कहानीकार, उपन्यासकार, निबंधकार, प्रबंधकार, लेखक, शब्दचित्रकार आदि ।

काव्य की कुछ प्रमुख परिभाषाएँ

1. "शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्" (शब्द और अर्थ के सहभाव को काव्य कहते हैं) । - आचार्य भामह ।
2. "वाक्यं रसात्मकं काव्यम्" अर्थात (रसात्मक वाक्य काव्य है) । - आचार्य विश्वनाथ ।
3. "रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्" (रमणीय अर्थ देने वाला शब्द काव्य है) ।-पंडितराज जगन्नाथ ।
4. "जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञानदशा कहलाती है उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रसदशा कहलाती है । हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आई है, उसे कविता कहते हैं ।" - रामचंद्र शुक्ल ।

साहित्य शब्द का मूल अर्थ शब्द तथा अर्थ का सहभाव (एक साथ होना) है । इसके अंतर्गत हर अर्थपूर्ण लेखन आ जाता है । भावना की प्रधानता तथा कलात्मकता से युक्त लेखन साहित्य होता है, जिसके अंतर्गत कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक आदि दृश्य तथा श्रव्य विधाएँ आती हैं ।

दृश्य विधाओं का मंच पर प्रस्तुतीकरण होता है । यानी देखने-दिखाने में ही उनकी सार्थकता होती है । यही कारण है कि उन्हें आरंभ में दृश्य काव्य कहा गया ।

श्रव्य शब्द का प्रयोग ध्वनित करता है कि तब छपाई तथा कागज की सुविधाएँ नहीं थीं । रचना सुनाने के लिए ही की जाती थी । यानी जो रचना सुनी-सुनाई जाए उसे श्रव्य कहा गया ।

दृश्यकाव्य

नाटक : नाटक उस दृश्य विधा को कहा जाता है, जो अभिनय के द्वारा दर्शकों के समक्ष प्रस्तुत की जाती है । नाटक में रचना से लेकर मंचन तक इसके अनेक अंग बन जाते हैं ।

(क) नाटक लिखने वाला नाटककार कहा जाता है ।

(ख) मंच पर लिखित नाटक का अभिनय करने वाला अभिनेता कहा जाता है ।

(ग) विभिन्न अभिनेताओं को अभिनय तथा भूमिकाएँ समझाने वाला निर्देशक कहा जाता है ।

(घ) नाटक के दर्शक को प्रेक्षक (सहृदय) कहा जाता है ।

(ङ) जहाँ नाटक का मंचन होता है उस कक्ष को प्रेक्षागृह कहा जाता है ।

(च) मंच और दर्शक के बीच कपड़े के पर्दे का प्रयोग होता है, जो दृश्य परिवर्तन के साथ उठाया-गिराया जाता है, उसे संस्कृत में यवनिका कहा गया है ।

(छ) मंच के पिछले भाग में स्थाई रूप से एक पर्दा टँगा रहता है, जिसके पीछे के भाग को नेपथ्य कहा जाता है । नेपथ्य में ही अभिनेता अभिनय की तैयारियाँ करते हैं । उस हिस्से को अंग्रेजी में 'ग्रीन रूम' कहा गया है ।

वर्तमान नाटकों में प्रकाश व्यवस्था तथा ध्वनि संयोजन का भी उल्लेखनीय महत्त्व होता है। इसी से नाटकों के मंचन में इनके विशेषज्ञों की आवश्यकता पड़ती है ।

(ज) रेडियो नाटक तथा चलचित्र में यंत्रों के संचालक की भूमिका प्रधान हो जाती है । चलचित्र में

छायाकार तथा रेडियो नाटक में रिकॉर्डिंग करने वाले प्रमुख होते हैं ।

नाटक के तत्त्व

नाटक के छह तत्त्व होते हैं - 1. कथावस्तु, 2. पात्र, 3. कथोपकथन (संवाद), 4. देशकाल, 5. भाषाशैली, 6. उद्देश्य ।

1. **कथावस्तु :** कथावस्तु उस मूल बिंदु (घटना) को कहा जाता है, जिसे नाटककार अपनी रचना का आधार बनाता है । कथावस्तु को पाठक या प्रेक्षक तक पहुँचाना नाटककार का उद्देश्य होता है । नाटक का यह पहला तत्त्व होता है । इसे कथानक भी कहा जाता है ।

2. **पात्र :** नाटक का दूसरा तत्त्व पात्र होता है । बिना किसी पात्र के कोई कथा बन ही नहीं सकती । कथावस्तु का केंद्र कोई घटना होती है । उसे घटित होने या विकसित होकर कथा का रूप धारण करने के लिए प्रत्यक्ष, परोक्ष, चेतन, जड़, सजीव या निर्जीव यानी किसी तरह के पात्र या पात्रों की अनिवार्य आवश्यकता होती है । पात्रों में नायक, नायिका, सहनायक तथा प्रतिनायक प्रमुख होते हैं । नाटक के प्रमुखतम पात्र को नायक या नायिका कहा जाता है । नाटक के अंतिम फल का भोक्ता नायक ही होता है । हिंदी में अनेक नायिका प्रधान नाटकों की भी रचनाएँ हुई हैं । सहनायक उस पात्र को कहा जाता है जो नाटक में दूसरा महत्त्वपूर्ण पात्र तथा नायक का सहयोगी होता है । नाटक में इसका होना अनिवार्य नहीं होता । प्रतिनायक उस पात्र को कहा जाता है, जो नायक के विरुद्ध स्वभाव, दर्शन तथा आचरण वाला हो ।

3. **कथोपकथन :** नाटक का तीसरा तत्त्व कथोपकथन होता है । कथा विकास में इस तत्त्व का उल्लेखनीय महत्त्व होता है । इसे संवाद भी कहा जाता है । इसके दो भेद हैं - **प्रकट** तथा **स्वगत** । नाटक में पात्रों की सोच को भी अभिनेता बोलकर ही प्रेक्षक (दर्शक) तक पहुँचाता है । ये संवाद ही स्वगत कहे जाते हैं । तात्पर्य यह कि पात्रों के प्रकट कथोपकथनों (कथन+उपकथन) को प्रकट संवाद कहा जाता है और उनकी सोच को स्वगत ।

4. **देशकाल :** नाट्याचार्यों ने देशकाल यानी स्थान तथा समय को नाटक के चौथे तत्त्व के रूप में स्वीकार किया है । कथानक के घटित-विकसित होने के लिए किसी स्थान और समय की अनिवार्यता होती है । इन दो के अभाव में कोई कथानक संभव नहीं हो सकता और जब कथानक संभव नहीं होगा तो नाटक की रचना भी अकल्पनीय हो जाएगी । ये स्थान और समय भी एक हो सकते हैं और प्रसंग के अनुसार अनेक भी । परंतु कथानक तथा पात्रों के साथ उनकी अन्विति आवश्यक होती है । यानी इन अन्य तत्त्वों से देशकाल का स्वाभाविक संबंध होना आवश्यक होता है । देशकाल की असंबद्धता नाटक में दोष पैदा कर देती है ।

5. **भाषा-शैली :** नाटक का पाँचवाँ तत्त्व भाषा-शैली को माना गया है । नाटकों के मंचन के लिए भाषा-शैली माध्यम की भूमिका निभानेवाला अनिवार्य तत्त्व सिद्ध होती है । देशकाल एवं प्रसंग आदि के अनुसार इस तत्त्व में स्वाभाविक विविधताएँ होती हैं । प्राचीन काल से लेकर वर्तमान काल तक नाटकों की भाषा ही नहीं, शैलियों में भी अनेक परिवर्तन हुए हैं । एक भाषा में लिखित तथा मंचित अनेक नाटकों में शैलीगत भिन्नताएँ दिखाई पड़ती हैं । एक भाषा में भी शब्द-प्रयोग तथा वाक्यों की भंगिमाओं के अनेक रूप दिखाई पड़ते हैं । जयशंकर प्रसाद तथा मोहन राकेश के नाटक हिंदी भाषा में लिखित हैं और मंचित भी होते हैं । परंतु दोनों की शैली ही नहीं, भाषा-रूप में भी अंतर स्पष्ट देखे जा सकते हैं ।

6. **उद्देश्य :** उद्देश्य को आचार्यों ने नाटक का छठा तत्त्व बताया है । उद्देश्य का नाटक के विभिन्न तत्त्वों पर गहरा प्रभाव पड़ता है । उद्देश्य की यथार्थता, प्रासंगिकता, आधुनिकता आदि का नाटक की रचना पर प्रभाव पड़ता है । नाटककार के दर्शन तथा दृष्टिकोण के अनुसार नाटकों के उद्देश्य निर्धारित होते हैं।

नाटक के अनेक रूप हैं - (क) काव्यनाटक, (ख) रेडियोनाटक, (ग) एकांकी, (घ) नुक्कड़ नाटक आदि ।

(क) काव्यनाटक : काव्यनाटक उसे कहा गया है जिसके सारे संवाद पद्यात्मक होते हैं । केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' का 'संवर्त्त', धर्मवीर भारती का 'अंधायुग' और रामेश्वर सिंह 'काश्यप' का 'समाधान' या 'नीलकंठ निराला' काव्य नाटक हैं ।

(ख) रेडियोनाटक : रेडियोनाटक दृश्यकाव्य का एक ऐसा भेद होता है, जो दृश्य नहीं; श्रव्य होता है । इसमें अभिनेता को अपने संवादों द्वारा ही पूरा कथ्य व्यंजित करना पड़ता है । इसमें न मंच होता है, न यवनिका और न ही नेपथ्य या प्रेक्षागृह । इसमें अलग से प्रकाश व्यवस्था की भी आवश्यकता नहीं होती, किंतु ध्वनि व्यवस्था सटीक होती है ।

रेडियो नाटक में स्वगत का महत्त्व विशेष बढ़ जाता है । रेडियो नाटक की एक विशेषता यह भी होती है कि अभिनेताओं की एक प्रस्तुति की रिकॉर्डिंग करके उसे संगृहीत कर लिया जा सकता है और अनेक बार उसका प्रसारण किया जा सकता है ।

(ग) एकांकी : दृश्य काव्य का दूसरा सबसे महत्त्वपूर्ण भेद एकांकी है । इस विधा में भी नाटकवाले छह तत्त्व – वस्तु, पात्र, कथोपकथन, देशकाल, शैली, उद्देश्य अनिवार्य होते हैं । इन सारे तत्त्वों के संघटन से जो नाट्य रचना एक अंक में ही पूर्ण हो जाती है, उसे एकांकी कहा जाता है । इसमें एक अंक का होना अनिवार्य है, परंतु इसमें दृश्य अनेक हो सकते हैं ।

नाटक तथा नाट्यशास्त्र ये दोनों संस्कृत साहित्य की अति प्राचीन विधाएँ हैं, परंतु एकांकी हिंदी साहित्य के आधुनिक काल की देन है । कहानी की भाँति एकांकी में भी एक घटना की केंद्रीयता होती है और एक ही कथा विकास उद्देश्य तक पहुँच जाता है । राम कुमार वर्मा, भुवनेश्वर, धर्मवीर भारती, मोहन राकेश, देवेंद्रनाथ शर्मा, विष्णु प्रभाकर आदि हिंदी के श्रेष्ठ एकांकीकार माने गए हैं ।

(घ) नुक्कड़ नाटक : नुक्कड़ नाटक एक आधुनिकतम विधा है । इसे एकांकी का पूर्णत: मंचमुक्त सरल रूप कहा जा सकता है । इसमें प्रस्तुतीकरण मंच, परदा, माइक आदि से पूर्णत: मुक्त हो जाता है। निर्देशक किसी भी मोड़ या अन्य खुली जगह पर अपने अभिनेताओं को खड़ा कर अभिनय कराना प्रारंभ कर देता है । उनके साथ ढोलक-हारमोनियम जैसे कुछ वाद्य यंत्र होते हैं, परंतु शिल्प की दृष्टि से उनकी भी इसमें अनिवार्यता नहीं है ।

नुक्कड़ नाटक सोद्देश्य प्रस्तुतीकरण के आधुनिकतम माध्यम हैं । आठवें दशक में राजनीति से प्रेरित नाट्य संस्थाओं ने सामाजिक खामियों के विरुद्ध जनजागरण के लिए नुक्कड़ नाटक की प्रस्तुतियों के अनेक सफल तथा प्रशंसनीय उदाहरण प्रस्तुत किए ।

नुक्कड़ नाटक मूलत: एकांकी नाटक ही होते हैं । इसमें दृश्य भी अनिवार्यत: एक ही होता है । इसमें अभिनेता अपने स्वाभाविक परिधान में होते हैं ।

चलचित्र

चलचित्र एक आधुनिक कला माध्यम है । बीसवीं शताब्दी में मनोरंजन एवं ज्ञान के साधन के रूप में इसने विशेष ख्याति प्राप्त की है । इस दृष्टि से, भारत जैसे देश में जहाँ अशिक्षा और गरीबी बहुत अधिक है, इसका महत्त्व निर्विवाद है । चलचित्र के निर्माण एवं पूरी संकल्पना में अनेक व्यक्तियों का योगदान होता है । निर्माता, निदेशक, अभिनेता, पटकथा लेखक, गीतकार, कैमरामैन आदि से लेकर स्पॉट ब्वॉय तक की इसमें भूमिका होती है ।

जिस तरह कोई लेखक कहानी की रचना करता है, चलचित्र रचयिता चलचित्र का । इस कार्य में बिंब (इमेज) और शब्द (साउंड) उसकी भाषा का कार्य करते हैं । एक कल्पनाशील एवं मौलिक निर्देशक चलचित्र के जरिए अपने समय से सार्थक संवाद करता है एवं समाज को दिशा देने की कोशिश करता है । चलचित्र एवं साहित्य दोनों एक-दूसरे से प्रेरणा ग्रहण करते हैं । हिंदी के प्रसार में चलचित्रों की उल्लेखनीय भूमिका है । दिगंत 'भाग-1' में चलचित्र पर महान फिल्म निर्देशक सत्यजित राय का पाठ संकलित है । इस पाठ के द्वारा आप चलचित्र के संबंध में अपनी समझ विकसित कर सकते हैं ।

श्रव्यकाव्य

वर्तमान हिंदी साहित्य तथा हिंदी साहित्यशास्त्र में पद्य, काव्य तथा कविता प्रायः एक दूसरे के पर्याय हैं । साहित्यशास्त्र में छंदोबद्ध रचना को पद्य कहा जाता है । छंदोबद्ध रचना वह है जो गण, वर्ण, मात्रा आदि के निर्धारित नियमों के अनुसार हो । मात्रिक या वर्णिक इन दो में एक का होना उसके लिए अनिवार्य होता है । पद्य रचना निर्विवाद रूप से काव्य नहीं होती है । आयुर्वेद, ज्योतिष आदि के ग्रंथ भी पदबद्ध हैं, पर वे काव्य नहीं कहे जा सकते । ऐसा संभव है कि पद्य रचना में काव्यत्व कमजोर हो, परंतु है वह कविता ही । इसके दो भेद होते हैं - (क) प्रबंध काव्य और (ख) मुक्तक काव्य ।

प्रबंधकाव्य : प्रबंध उस काव्यात्मक रचना को कहा जाता है, जिसकी प्रत्येक पंक्ति और छंद में पूर्वापर संबंध हो । इस तरह यह रचना कथात्मक हो जाती है । प्रकारांतर से कह सकते हैं कि कथात्मक काव्य रचना प्रबंध काव्य होती है । प्रबंध में वर्णित कथा दीर्घ तथा अनेक सर्गों में बँटी होती है । 'रामचरितमानस', 'पद्मावत', 'रामचंद्रिका', 'साकेत', 'कामायनी', 'जयद्रथवध', 'रश्मिरथी' आदि प्रबंधकाव्य के उदाहरण हैं । इसके भी दो भेद होते हैं - (क) महाकाव्य और (ख) खंडकाव्य ।

महाकाव्य : यह काव्य साहित्य की एक सम्मानित विधा है । आचार्य भामह (पाँचवीं शती) ने अपने ग्रंथ 'काव्यालंकार' सूत्र में कहा है कि "लंबे कथानकवाला, महान चरित्रों पर आश्रित, नाटकीय पंचसंधियों से युक्त, उत्कृष्ट और अलंकृत शैली में लिखित तथा जीवन के विविध रूपों और कार्यों का वर्णन करने वाला सर्गबद्ध सुखांत काव्य ही महाकाव्य होता है ।"

संस्कृत में वाल्मीकीय 'रामायण', कालिदास का 'रघुवंश', हर्ष का 'नैषधचरित' आदि प्रमुख महाकाव्य हैं । हिंदी में चंदवरदायी का 'पृथ्वीराज रासो', जायसी का 'पद्मावत', तुलसीदास का 'रामचरितमानस', केशवदास की 'रामचंद्रिका', मैथिलीशरण गुप्त का 'साकेत', जयशंकर प्रसाद की 'कामायनी' आदि प्रमुख महाकाव्य हैं ।

खंडकाव्य : प्रबंधकाव्य का दूसरा भेद खंडकाव्य होता है । इसे खंडप्रबंध भी कहा जाता है । वस्तुतः यह किसी विस्तृत समग्र कथा का खंड (या अंश) मात्र होता है । विस्तृत महाकाव्यात्मक विषयवस्तु